14 सन्मति प्रचार हेतु : सन्मति-तीर्थ की स्थापना

श्रमण भगवान् महावीर वैशाली का राजकुमार है। ऐश्वर्य वैभव एवं भोग-विलास के वातावरण में जीवन का शैशव एवं यौवन उभरता रहा है। इसलिए उनके वैराग्य में न दुःख की छाया रही है, न अभाव एवं पीड़ा-वेदना की कराह परिलक्षित होती है। उनके जीवन में उभरते विराग भाव में ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित रही है। मन में दुःख, दर्द और पीड़ा तो थी, परन्तु वह निज की व्यक्तिगत नहीं थी। वह थी, अन्धकार में भटक रही, ठोकरें खा रही, जन-मन की पीड़ा। धर्म के नाम पर पाखण्डों के फैल रहे अज्ञान अन्धकार में पथ-भ्रमित जनता को मार्ग नहीं मिल रहा था। श्रद्धालु-जन केवल चल रहे थे, पर न मंजिल का पता था और न मार्ग का ही। ऐसे विकट समय में वर्धमान की अन्तर्-चेतना में ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित हुई। इसलिए उनका वैराग्य ज्ञान-गर्भित वैराग्य है। जीवन के यथार्थ स्वरूप को समझ कर साधना-पथ पर गतिशील वैराग्य है।

तीस वर्ष की भरी हुई तरुणाई में इन्सान की आँखें (अन्तर्चक्षु) बन्द रहती हैं, ऐसे मादक क्षणों में संसार भोग-वासना के बन्धनों में बन्धा रहता है, परन्तु यह विराट ज्योति-पुरुष भर यौवन में संसार के बन्धनों से मुक्त होकर चल पड़ा सत्य की शोध में। और जन-जन के मंगल हेतु, कल्याण हेतु रास्ता खोजना शुरु किया। साढ़े बारह वर्ष तक भयंकर निर्जन वनों में वृक्षों के नीचे आसन जमाए बैठा रहा, जहाँ दिन-रात व्याघ्र-सिंह दहाड़ते गर्जते रहते थे। पर्वत शिखरों पर और वैभारगिरि (राजगृह) की सप्तपर्णी जैसी अंधकाराछन्न गहन गुफाओं में चार-चार महीने तक निराहार-निर्जल रहकर आसन लगाकर ध्यानस्थ हो गए प्रकाश के साक्षात्कार के लिए। अन्धकार में प्रकाश की खोज, ज्योति की तलाश? हाँ, उजाले की आवश्यकता अंधेरे में ही तो है। अंधकार ही नहीं, तो प्रकाश की आवश्यकता ही क्या है? हाँ तो, श्रमण वर्धमान की, महावीर की साधना प्रकाश की, ज्योति की साधना है। उनके दिव्य शरीर की कान्ति से एक ओर अंधेरी गुफा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशमान हो रही थी, तो दूसरी ओर अन्तर्-हृदय की अन्धेरी गुफा-ज्ञान-ज्योति से जगमगा रही थी।

ऐसे साढ़े बारह वर्ष की दीर्घ तपःसाधना, ध्यान-साधना की धारा में प्रवहमान श्रमण महावीर वैशाख शुक्ल नवमी को ऋजुवालिका के तट पर पधारे। उस समय उसका नाम ऋजुवालिका था, आज हम उसे बराकर नदी के नाम से सम्बोधित करते हैं। उसके उत्तर तट पर शाल-वृक्ष के नीचे ध्यान मुद्रा में स्वयं में ध्यानस्थ हो जाते हैं। शाल-वृक्ष श्रमण महावीर का ज्ञान-वृक्ष है। दो दिन स्वयं स्वयं के चिन्तन में संलग्न रहे। वह अन्तर्-ज्योति विशाल होते-होते वैशाख शुक्ल दशमी को सूर्यास्त के समय अनन्त हो गई। उस अनन्त प्रकाश को, अनन्त ज्योति को हम केवलदर्शन-केवलज्ञान कहते हैं। इस प्रकार श्रमण महावीर राग-द्वेष, काम-क्रोध, मद-लोभ आदि विकारों से सर्वथा मुक्त हो गए, अरहन्त हो गए, वीतराग हो गए। वह ज्योति-पुरुष जिस लक्ष्य को लेकर साधना-यात्रा पर चला था, उस लक्ष्य पर पहुँच गया।

वैशाख शुक्ल दशमी की संध्या बेला में जब प्रकृति का सूर्य अंधेरे में डूब रहा था, उस समय श्रमण महावीर के अन्तर् क्षितिज पर अनादि काल की रात्रि का भेदन कर उदित हो रहा था अनन्त ज्ञान का ज्योतिर्मय सूर्य। केवलज्ञान का सूर्य उदय हुआ कि समस्त अंधकार छिन्न-भिन्न हो गया। शक्रस्तव के शब्दों में-"जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं, तारयाणं, बुद्धाणं बोहियाणं..." वह जिन अर्थात् विजेता हो गया और जन-जन को विजय का मार्ग बताने लगा। स्वयं संसार-सागर को तैरकर पार कर गया और संसार को तैरने का पथ बताने लगा। स्वयं प्रबुद्ध हो गया, और भव्य प्राणियों को-जो अज्ञान की निशा में सो रहे थे, जगाने हेतु उसकी उपदेश-धारा बहने लगी।

उनका प्रथम उपदेश कहाँ पर हुआ? ऋजुबालिका के तट पर। उस समय उनकी दिव्य देशना को किसी ने समझा नहीं। वहाँ की स्थिति ऐसी थी कि किसी ने बोध प्राप्त नहीं किया। यहाँ बोध प्राप्त न करने का अर्थ है -तीर्थ की स्थापना नहीं हुई। अतः धर्म तीर्थ की स्थापना हेतु श्रमण भगवान् महावीर वहाँ से तत्काल चल पड़े। सत्य का साक्षात्कार होने के बाद वाणी मौन के तटबन्ध को तोड़कर मुखर हो उठती है, भले ही सुनने वाला उसे सम्यक् रूप से समझ पाए या न समझ पाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक दार्शनिक एक गूढ़ रहस्य को सुलझाने में संलग्न था। जीवन-चर्या की हर क्रिया के साथ उसका मन-मस्तिष्क सत्य को सुलझाने में संलग्न रहता था। एक दिन प्रातः स्नान करने टब में बैठ गया। निर्वस्त्र स्नान कर रहा था। शरीर को मलते-मलते रहस्य की गुत्थी सुलझ गई, उसे सत्य का साक्षात्कार हो गया। फिर क्या था, वह एक दम उठा और उस प्राप्त सत्य के ऊपर पड़े हुए आवरण का उद्‌घाटन करने घर से निकल कर गलियों को पार करता हुआ बाजार में पहुँच गया-पा लिया, पा लिया.... पुकारता हुआ। लोग आश्चर्यचकित हो देखने लगे यह क्या? इतना बड़ा दार्शनिक और नंगा ही चला आ रहा, पगला गया है क्या? जब उसने उस रहस्य पर पड़े आवरण को हटाकर सत्य को सामने रखा, तब समझ में आया कि इसे सत्य को बताने की इतनी उत्कण्ठा थी कि उसे वस्त्र पहनने का भी ध्यान नहीं रहा।

श्रमण महावीर भी अनन्त ज्योति के प्रज्वलित होते ही मुखरित हो गए। इस बात का कोई अर्थ नहीं रहा उनके सामने कि उनकी दिव्य देशना को कौन समझेगा? उन्हें यह सोचने की अपेक्षा ही नहीं रही वाणी रूप दिव्य-गंगा को धारण करने वाला शिव है या नहीं। वह ज्योतिर्मय तेजस्वी धारा प्रवहमान हो ही गई।

उस ज्योति-पुरुष ने देखा, कि पावापुरी में एक विशाल यज्ञ का आयोजन हो रहा है। राजगुरु के पद पर प्रतिष्ठित वेदों के ज्ञाता विद्वान अपने विशाल शिष्य मण्डल के साथ यज्ञ के आयोजन में लगे हैं। हजारों मूक पशुओं की यज्ञ-वेदी पर आहुति दे दी जाएगी। आकाश धुएँ की कालिख से भर जाएगा और धरती निरपराध मूक पशुओं के खून से रंग जाएगी। चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु लिखते हैं-इस महान् हिंसा को रोकने हेतु भगवान् महावीर संध्या वेला में ही वहाँ से चल पड़े पावापुरी के लिए। और वे सारी रात चलते रहे। प्रातः उनका समवसरण लगा पावापुरी के महासेन वन में।

इधर श्री इन्द्रभूति गौतम आदि ग्यारह विद्वान अपने-अपने विशाल शिष्य मण्डल के साथ यज्ञ की तैयारी में लगे थे। उधर यज्ञ मण्डप के निकट महासेन वन में तीर्थंकर महावीर की दिव्य ध्वनि अनुगुँजित हो उठी। वह श्रमण भगवान् महावीर की हिंसा जन्य यज्ञों के विरोध में अहिंसा की प्रथम देशना थी। यज्ञ के विरोध की सूचना यज्ञ-मण्डप तक भी पहुँची। इसे सुनकर इन्द्रभूति गौतम को मालूम पड़ा कि श्रमण भगवान् महावीर यज्ञ का विरोध कर रहे हैं। उसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहंकार जाग उठा। महावीर क्षत्रिय कुमार है। क्षत्रिय को स्वयं वेद पढ़ने का अधिकार तो है, परन्तु जनता को सुनाने का अधिकार उसे नहीं है। वह गुरु के, ब्राह्मण के चरणों में बैठकर शिक्षा लेने का अधिकारी तो है, परन्तु गुरु के उच्च सिंहासन पर बैठ कर उपदेश देने का अधिकारी नहीं है। परन्तु, यह क्षत्रिय गुरु बन गया है और गुरु के आसन पर बैठ कर यज्ञ के विरोध में उपदेश दे रहा है, जन-मन में यज्ञ के विरोध में वातावरण तैयार कर रहा है। मैं स्वयं जाकर शास्त्रार्थ करके उसे पराजित करता हूँ। गौतम अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ चल पड़ा भगवान् महावीर के समवसरण की ओर।

समवसरण में प्रवेश करते ही श्रमण भगवान् महावीर ने कहा-"सागयं गोयमा!" गौतम, तुम ठीक समय पर आए हो। स्वागत है तुम्हारा। आज तो साधु भी अपनी परम्परा से भिन्न परम्परा के साधु के आगमन पर भी ऐसी उदात्त भाषा का प्रयोग नहीं करते। परन्तु, भगवान् महावीर गौतम के लिए, जो अभी मिथ्यादृष्टि है, हिंसक यज्ञों का आयोजन कर रहा है। फिर भी भगवान् उसे आदर के साथ सम्बोधित करते हैं।

गौतम का कुछ अहंकार तो यहीं टूट गया। ये तो मेरा नामगोत्र भी जानते हैं। वह मन में सोचने लगा कि यह क्षत्रिय तो है, परन्तु लगता है क्षत्रियत्व से, जाति से बहुत ऊपर उठ गया है। इसके जीवन में सत्य की ज्योति है। फिर जब प्रभु की पीयूषवर्णी वाणी सुनी, तो उस पावन-निर्मल वाग्गंगा में मन का मैल धुलता गया, उसका चित्त शुद्ध होता गया। अन्तर् में ज्ञान-दीप प्रज्वलित हो गया और वहीं प्रबुद्ध हो गया गौतम। आया था अहंकार के साथ और बोध पाते ही स्वयं ही नहीं, अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ समर्पित हो गया प्रभु चरणों में। यह भी नहीं, कि अपने परिवार से मिलने और घर की व्यवस्था करने के लिए थोड़ा समय ले लूँ। आगमों में ऐसा वर्णन भी आता है, कि अनेक व्यक्तियों ने बोध प्राप्त करने के बाद कहा - भगवन्, हम घर जाकर अपने माता-पिता एवं परिजनों से अनुमति लेकर पुनः आते हैं आपके चरणों में दीक्षित होने के लिए। परन्तु, गौतम ने तथा उनकी तरह क्रमशः आए अन्य दस विद्वानों ने ऐसा नहीं किया। वे अपने-अपने शिष्यों के साथ आए, शास्त्रार्थ किया और बोध प्राप्त होते ही वहीं दीक्षित हो गए। और श्रमण भगवान् महावीर ने भी यह नहीं कहा कि गौतम ! तुम और तुम्हारे पाँच सौ शिष्य श्रमण-प्रव्रज्या स्वीकार कर रहे हो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके पूर्व अपने अभिभावकों-माता-पिता तथा पत्नी आदि की अनुमति ले आओ। परन्तु, स्पष्ट है कि भगवान् ने भी ऐसा नहीं कहा। ज्यों वह जागृत हुआ, त्यों ही उसे एवं उसके शिष्यों को तथा अन्य विद्वानों को भी उनके शिष्यों के साथ दीक्षित कर लिया और तीर्थ की स्थापना कर दी।

इतिहास की दृष्टि से आज का यह वैशाख शुक्ला एकादशी का दिन महत्त्वपूर्ण है। उसी स्मृति में हम अभी जो शास्त्र पाठ कर रहे थे—यह नन्दीसूत्र का पाठ है, जो महान् ज्योतिर्धर आचार्य श्री देववाचक की रचना है, उसमें तीर्थ की महिमा, भगवान् महावीर की महिमा और गणधरों की महिमा के गौरव गान है। भगवान् महावीर का तीर्थ इतना उदात्त एवं अद्भुत तीर्थ है कि इसमें सम्मिलित होने के पूर्व बाहर में कोई जाति, वर्ग, वर्ण आदि के घेरे में कैसा भी रहा हो, परन्तु तीर्थ में आने के बाद कोई भेद-भाव नहीं रहा—न जाति का, न वर्ग का और न वर्ण का। सब श्रमण-श्रमणी हैं, सब श्रावक-श्राविका हैं, न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा है।

परन्तु, आज हम देखते हैं कि संघ में आने के बाद भी दसे-बीसों के नाम पर संघर्ष होते हैं, ढइये-पाँचों की जाति को लेकर संघर्ष होते हैं साधुओं में भी। श्रावक वर्ग में पनप रहे जातीय भेदों को मिटाने का प्रयास होता नहीं। भगवान् महावीर के तीर्थ की उदात्त भावना के अनुरूप भ्रातृभाव की, बन्धुत्व की भावना जगाई नहीं जाती, परन्तु साधु संघ में भी उन भेदों को स्थान मिल जाता है। और अनेक बार ये जातीय भेद इतने उभर कर सामने आते रहते हैं, जो महावीर के तीर्थ के महत्त्व को कम कर रहे हैं। आज निष्क्रिय जड़ क्रिया-काण्डों के पकड़े हुए आग्रहों पर तो जोर दिया जाता है, परन्तु तीर्थ की मूल भावना की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है।

भगवान् महावीर का तीर्थ तो तीर्थ रहा। उसमें जाति एवं वर्ग का कोई महत्त्व नहीं था। यदि शूद्र ने पहले दीक्षा ले ली और एक श्रोत्रिय ब्राह्मण बाद में दीक्षित होता है, तो वह उसे वन्दन करेगा। एक महारानी की दासी या सम्राट दास पहले दीक्षित हो गया है और महारानी एवं सम्राट् बाद में दीक्षा ग्रहण करते हैं, तो वे उस दासी एवं दास को बिना किसी भेद-भाव के वन्दन करेंगे। इसका तात्पर्य है कि महावीर का तीर्थ समन्वय का तीर्थ है। इस दृष्टि से यह तीर्थ महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि भगवान् महावीर सर्वप्रथम सम्यक्-बोध की बात कहते हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर आचार की–"पढ़मं नाणं तओ दया।" क्योंकि जिसे सम्यक्-बोध नहीं है, वह अज्ञानी आचार का पालन ही क्या करेगा? इसलिए भगवान् महावीर के शब्दों में आचार मुख्य नहीं, मुख्य है–सम्यक्-बोध, सम्यक्-ज्ञान–

"अन्नाणी किं काही? किं वा नाहीइ छेय - पावगं"

भगवान् महावीर की यही एक महत्त्वपूर्ण घोषणा थी–सर्वप्रथम स्वयं को जानो। स्वयं के स्वरूप का सम्यक्–बोध साधना का सबसे महत्त्वपूर्ण सोपान है। उनके पूर्व एवं उनके समय में भी अनेक गुरु ऐसे थे, जो शिष्यों को यों ही साधना-पथ पर ढकेलते जा रहे थे। स्वरूप-बोध की कोई बात नहीं, सिर्फ कर्म–क्रिया-काण्ड करते रहो। परन्तु भगवान् ने कहा–आँख बन्द करके चलने का कोई अर्थ नहीं है। चलने के पहले, कर्म-पथ पर गति करने के पूर्व स्वरूप का सम्यक्-बोध प्राप्त करो। उसके पश्चात् तुम स्वयं निर्णय करो कि क्या करना है, क्या नहीं करना है?

आचार्य कल्प महाकवि धनंजय ने जब भगवान् महावीर के नामों का वर्णन किया। तो सर्वप्रथम उनके 'सन्मति' नाम का उल्लेख किया–

"सन्मतिर्महतीर्वीरो महावीरोऽन्त्य काश्यप।
नाथान्वयो वर्धमानो यत्-तीर्थमिह साम्प्रतम।।"

इसमें सबसे पहले सन्मति नाम रखा है। यहाँ छन्द भंग का तो प्रश्न नहीं था। पहले महती आदि अन्य नाम भी रख सकते थे। परन्तु वास्तव में महावीर सन्मति का देवता है। सन्–श्रेष्ठ, निर्मल और मति–बोध वाले। वस्तुतः जब तक साधक को सम्यक्-ज्ञान नहीं होता, उसकी मति सम्यक् नहीं होती, तब तक उसका कर्म भी सम्यक् नहीं हो सकता। इसलिए सम्यक्-मति का, सन्मति का सबसे पहले होना आवश्यक है।

क्योंकि दुनिया के सभी पाप, अधर्म अज्ञान एवं दुर्मति में से ही जन्म लेते हैं। अतः जब तक अज्ञान-अंधकार समाप्त नहीं होगा, सन्मति प्राप्त नहीं होगी, तब तक न तो कोई व्यक्ति सुखी हो सकेगा, न कोई परिवार, समाज एवं राष्ट्र सुखी हो सकेगा। इसलिए कहा गया है–मैं कौन हूँ? मेरी क्या शक्ति है, मैं क्या कर सकता हूँ? इसका बार-बार चिन्तन करो, अनवरत चिन्तन करो। स्वयं को जानो, समझो और अपनी शक्ति के अनुसार आगे बढ़ो–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"कश्चाऽहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्य मुहुर्-मुहुः।"

जब तक तुमको अपने स्वरूप का, अपनी शक्ति का, अपने कर्म का बोध नहीं है, सही ज्ञान नहीं है, तब तक कदापि आगे नहीं बढ़ सकोगे। अस्तु सन्मति ही महत्त्वपूर्ण है, जिससे हम स्वयं समझ सकेंगे और दूसरों को भी सम्यक् रूप से समझा सकेंगे। सन्मति के अभाव में न हम दूसरों को सम्यक्तया समझा सकते हैं और न दूसरे हमको समझ एवं समझा सकते हैं। अतः महावीर के लिए प्रयुक्त सन्मति नाम यथार्थ है। यह एक महत्त्वपूर्ण बोध महावीर के तीर्थ का है, शासन का है—सन्मति दे भी सकें और सन्मति ले भी सकें। सत्य दूसरों को दे भी सकें और अगर अन्य कहीं भी सच्चाई है, तो उसे मुक्त मन से ग्रहण भी कर सकें। महावीर के तीर्थ में कहीं भी एकान्त आग्रह नहीं है। क्योंकि सत्य अनन्त है। इसलिए सत्य जहाँ भी मिले और वस्तुतः वह ग्रहण करने योग्य हो तो उसे खुले हृदय से ग्रहण करो। तुम्हारा जीवन साफ, स्वच्छ और स्पष्ट होना चाहिए। जैसे अन्दर वैसे बाहर—

"जहा अन्तोतहा बहिं"

आज के धर्म-संघों की, धर्म गुरुओं की स्थिति बड़ी विचित्र है। अन्दर में कुछ है और बाहर में उनका रूप कुछ और ही नजर आता है। इसी का प्रमाण है कि महावीर का तीर्थ, महावीर का शासन टुकड़ों-टुकड़ों में बिखर गया। और, एक दो नहीं, अनेक पंथ, सम्प्रदाय हो गए। गुजरात में गाँवों के नाम पर सम्प्रदाय हैं—गोंडल, लीम्बडी, दरियापुरी आदि। और पंजाब, राजस्थान आदि में गुरुओं के नाम से प्रचलित हैं सम्प्रदाएँ—हुकमीचन्दजी की संप्रदाय, जयमलजी, धर्मदासजी, रतनचन्दजी, जीवराजजी, रघुनाथजी आदि की सम्प्रदाएँ। क्या यह संघ उक्त गाँवों का है, उक्त धर्म-गुरुओं का है? क्या महावीर का धर्म तीर्थ किसी गाँव विशेष या धर्म-गुरु विशेष की जायदाद है, बपौती है? श्रमण भगवान् महावीर को, उनके धर्म तीर्थ को सब भूल गए। कोई गाँवों के अहंकार में बन्द हो गया, तो कोई धर्मगुरु के क्षुद्र दायरे में आबद्ध हो गया।

सबने अपनी-अपनी समाचारी बना ली। मैं विचार करता हूँ कि यह सब क्या है। न इन नामों में दार्शनिकता है, न ऐतिहासिक गौरव है।

श्रमण भगवान् महावीर तित्थयरे-तीर्थंकर हैं। वे तीर्थ के संस्थापक हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघकर नहीं। तीर्थ में जो पवित्रता है, वह अन्य में नहीं। तीर्थ संस्थापक महाप्रभु का दार्शनिक क्षेत्र में सुप्रसिद्ध एक नाम है—सन्मति।

इसलिए आज से हम अपने आपको 'सन्मति तीर्थ' के नाम से सम्बोधित करेंगे और जन-जन को सन्मति-तीर्थ का बोध देंगे, उस महान् सत्य का बोध कराएँगे।

श्रमण भगवान् महावीर का समवसरण भूमि पर तीर्थ-स्थापना के 2543 वें वर्ष के पावन-प्रसंग पर 'सन्मति-तीर्थ की उद्घोषणा की जा रही है।

भगवती सूत्र में उल्लेख है कि तीर्थंकर समवसरण में देशना देने के लिए सिंहासन पर बैठते हैं, तब 'नमो तित्थस्स' के रूप में तीर्थ को नमस्कार करते हैं। मैं कल महान समन्वयवादी आचार्य हरिभद्र के महान् ग्रन्थ 'ललित विस्तरा' का अध्ययन कर रहा था। उसमें एक प्रश्न है—"भगवान् के द्वारा तीर्थ को यह वन्दन किसलिए।" आचार्य ने कहा—यह तो एक कल्प है। क्योंकि तीर्थंकर का महत्त्व तीर्थ-स्थापना है। संसार-सागर को तैरकर पार करने का महत्त्वपूर्ण साधन है तीर्थ। इसलिए धर्म तीर्थ महान् है। इसी कारण भगवती सूत्र में 'नमो तित्थस्स' और ललित विस्तरा में आचार्य हरिभद्रसूरि ने 'नमस्तीर्थाय' लिखकर तीर्थंकरों द्वारा तीर्थ को नमस्कार करने का उल्लेख किया है। मैं विचार करता हूँ कि तीर्थ कितना पावन एवं महान् है कि अपनी रचना को रचनाकार स्वयं नमस्कार करता है। क्योंकि वास्तव में धर्मतीर्थ संसार के कल्याण के लिए है।

आज के पावन ऐतिहासिक दिवस पर हम भी सन्मति तीर्थ को नमस्कार करके संकल्प करते हैं—हम अपने को भगवान् सन्मति-महावीर के पवित्र नाम के साथ जोड़ते हैं। सम्प्रदाय की दृष्टि से नहीं, मान्यताओं एवं परम्पराओं की दृष्टि से भी नहीं और परम्परा से क्या कहा गया इससे भी नहीं, प्रत्युत हम तो इस दृष्टि से अपने को प्रभु चरणों में समर्पित कर रहे हैं, उनके साथ स्वयं को जोड़ रहे हैं, कि सत्य का साक्षात्कार करने मुक्त मन से चिन्तन किया जाए, स्वयं सत्य को समझा जाए और जन-जन को सत्य समझाया जाए। सन्मति स्वयं प्राप्त की जाए और सम्पर्क में समागत जनों को सन्मति दी जाए। हम उस महान् सत्य का जन-जन को बोध कराने का विचार रखते हैं, जिसका अनन्त ज्ञानियों ने अपने ज्योतिर्मय ज्ञान में साक्षात्कार किया है। इस दृष्टि से तीर्थ स्थापना के पावन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिवस पर हम अपने आपको उस तीर्थ की स्थापना में स्थापित कर लेते हैं। अतः महाप्रभु सन्मति के साथ तीर्थ शब्द का प्रयोग कर तीर्थंकर सन्मति-महावीर की समवसरण भूमि पर सन्मति-तीर्थ की स्थापना कर रहे हैं।

प्रभु चरणों में शत-शत वन्दन के साथ यही प्रार्थना है-

"सबके मन में सन्मति जागृत हो
जन-मन में सद्बुद्धि की ज्योति जगे"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org